International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारतीय हिंदू व्यक्तिगत कानूनों के संदर्भ में भारत के वैवाहिक कानूनों का बदलता परिप्रेक्ष्य

The Changing Perspective of Matrimonial Laws in India with Context to Hindu Personal Laws

Mr. Rakesh Kumar

Advocate, Law, Advocate

Abstract
Changing Perspective of Matrimonial Laws in India

अध्याय 1: प्रस्तावना, शोध की आवश्यकता और कार्यप्रणाली

1.1 ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति और न्यायशास्त्र के इतिहास में विवाह को केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि मानव जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक विकास का सर्वोच्च सोपान माना गया है। वेदों के प्राचीनतम संकलनों से लेकर स्मृतियों, उपनिषदों और समकालीन संहिताओं तक, विवाह की अवधारणा मानवीय अस्तित्व के समग्र संतुलन का केंद्र रही है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के सूक्तों में विवाह की पवित्रता को स्थापित करते हुए देवताओं से नवविवाहित जोड़े के कल्याण की प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद के विवाह प्रकरण (कांड 14.2, श्लोक 64) में स्पष्ट रूप से उल्लेख है:

इहेमाविन्द्र संनुदचक्रवाकेवदम्पती । प्रजयौनौस्वस्तकौविस्वमायुर्व्यऽ शनुताम् ॥**

इस मंत्र का शाब्दिक और दार्शनिक सार यह है कि हे परमपिता इंद्रदेव! आप इस नवविवाहित युगल को उसी प्रकार एक साथ और अटूट रूप से लाएं, जैसे चक्रवाक पक्षियों का जोड़ा सदैव एक-दूसरे के प्रति समर्पित रहता है। वे जीवन के सभी सांसारिक और आध्यात्मिक सुखों का आनंद लें, दीर्घायु हों और अपनी योग्य संतानों के साथ एक पूर्ण और समृद्ध जीवन व्यतीत करें।

वैदिक काल के उत्तरार्ध और महाकाव्य काल (रामायण और महाभारत) में भी इसी दार्शनिक विचार को आगे बढ़ाया गया। कालिदास रचित *अभिज्ञानशाकुंतलम्* में राजा दुष्यंत और शकुंतला के संदर्भ में महर्षि कण्व के माध्यम से आशीर्वाद स्वरूप कहा गया है:

काश्यपःययोतेरिव शर्मिष्ठाभर्तुर्बहुमताभव । सुतंत्वमपिसम्राजंसेवपूरुमवाप्नुहि ॥

अर्थात्, "तुम अपने पति की अत्यंत प्रिय और सम्मानित पत्नी बनो, जिस प्रकार राजा ययाति द्वारा शर्मिष्ठा को सर्वोच्च सम्मान और प्रेम दिया गया था। और तुम एक ऐसे प्रतापी पुत्र को जन्म दो, जो राजा पुरू की भांति इस संपूर्ण पृथ्वी का न्यायप्रिय और संप्रभु सम्राट बने।"

यह ऐतिहासिक साक्ष्य इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र में विवाह (पाणिग्रहण) को एक धार्मिक 'कर्मकांड' और अनिवार्य 'संस्कार' के रूप में स्थापित किया गया था, जिसका उद्देश्य न केवल शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति था, बल्कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थों का सामूहिक संपादन था।

1.2 विवाह का अर्थ और समाजशास्त्रीय परिभाषाएँ

विवाह की प्रकृति इतनी बहुआयामी और सांस्कृतिक रूप से विविध है कि इसे किसी एक सार्वभौमिक परिभाषा में बांधना अत्यंत कठिन है। विभिन्न समाजों, संस्कृतियों और कानूनी प्रणालियों में इसका स्वरूप बदलता रहता है। वैश्विक स्तर पर समाजशास्त्रियों और न्यायविदों ने इसे अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है:

प्रोफेसर विनोग्राडोफ़ (Prof. Vinogradoff): उनके अनुसार, "विवाह केवल यौन संबंधों को विनियमित करने और दांपत्य स्नेह द्वारा संचालित होने वाली एक सामाजिक संस्था मात्र नहीं है, बल्कि यह बच्चों के उचित पालन-पोषण की एक सुव्यवस्थित कानूनी व्यवस्था, आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति की एक सांस्थानिक व्यवस्था और सामाजिक सहयोग के लिए निर्मित एक दीर्घकालिक साझेदारी है, जिसमें कभी एक पक्ष की प्रधानता होती है तो कभी दूसरे की।"

रॉबर्ट एच. लोवी (Robert H. Lowie): लोवी ने इसे अधिक व्यावहारिक और समाजशास्त्रीय रूप देते हुए कहा कि, "विवाह उन स्पष्ट रूप से समाज और कानून द्वारा स्वीकृत संबंधों (unions) को दर्शाता है, जो केवल तात्कालिक यौन संतुष्टि से परे तक स्थायी बने रहते हैं। यही कारण है कि यह संपूर्ण पारिवारिक जीवन की आधारशिला है, क्योंकि यौन संतुष्टि तो विवाह के बिना भी समाज के बाहर प्राप्त की जा सकती थी, परंतु पारिवारिक निरंतरता केवल विवाह से ही संभव है।"
डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन: द हिंदू व्यू ऑफ लाइफ (1979) में उन्होंने विवाह के दार्शनिक और भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखा: "विवाह के अंतर्गत पुरुष कोई क्रूर तानाशाह नहीं है और न ही महिला उसकी दासी है। इसके विपरीत, दोनों एक उच्चतर आध्यात्मिक आदर्श के सेवक हैं, जिसके सामने उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं, प्रवृत्तियों और झुकावों को गौण होना पड़ता है। यहाँ कामुक प्रेम को आत्मविस्मृत भक्ति और निस्वार्थ समर्पण में बदल दिया जाता है। व्यक्तिगत भिन्नताएँ सदैव रहेंगी, और विवाह संस्था का मूल कार्य इन्हीं भिन्नताओं का उपयोग करके एक सामंजस्यपूर्ण और संपूर्ण जीवन का निर्माण करना है।"
न्यायिक दृष्टिकोण (Justice A.B. Rohtagi): दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए.बी. रोहतगी ने हरविंदर कौर बनाम हरमंदर सिंह (AIR 1984 Delhi 66) के ऐतिहासिक मामले में आधुनिक विधिक परिभाषा तय करते हुए कहा: "चाहे वह अंग्रेजी का सामान्य कानून (English Common Law) हो या भारतीय विवाह अधिनियम, कानून की दृष्टि में विवाह अन्य सभी को अपवर्जित करते हुए (to the exclusion of others) एक पुरुष और एक महिला का जीवन भर के लिए एक स्वैच्छिक और कानूनी संघ है।"
इस प्रकार, विवाह नागरिक समाज की वह नींव है जिसके बिना न तो सभ्यता का विकास संभव है और न ही सामाजिक प्रगति का।

1.3 अनुसंधान की आवश्यकता, समस्या और उद्देश्य

अनुसंधान की आवश्यकता (Need for the Study)
आधुनिक युग में औद्योगिक क्रांति, पश्चिमीकरण, वैश्विक नागरिकता और तकनीकी विकास ने मानव की सामाजिक सोच को गहराई से प्रभावित किया है। भारतीय व्यक्तिगत कानूनों में समय-समय पर किए गए विधायी हस्तक्षेपों, विशेष रूप से हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 और विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 1976 ने वैवाहिक संबंधों के पारंपरिक ताने-बाने को पूरी तरह से हिलाकर रख दिया है। विवाह की जो प्रकृति कभी 'अपरिवर्तनीय' और 'अटूट धार्मिक बंधन' मानी जाती थी, वह अब तेजी से 'नागरिक अनुबंध' (Civil Contract) और संविदात्मक व्यवस्था की ओर बढ़ रही है। अतः इस संक्रमणकालीन दौर में वैवाहिक विच्छेद (तलाक), भरण-पोषण, और नए उभरते संबंधों जैसे 'लाइव-इन रिलेशनशिप' और 'समलैंगिक विवाह' के कानूनी प्रभावों का व्यापक अध्ययन करना अनिवार्य हो गया है।
अनुसंधान की समस्या (Research Problem)
प्रस्तुत शोध का मुख्य अनुसंधान प्रश्न यह जांचना है कि क्या भारतीय व्यक्तिगत कानूनों में संसद द्वारा किए गए निरंतर विधायी संशोधनों और हस्तक्षेपों के कारण विवाह के मूलभूत आध्यात्मिक और सांस्कृतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं? इसके अतिरिक्त, क्या विवाह विच्छेद (तलाक) के नियमों को अत्यधिक उदार (liberalize) बना देने से पारिवारिक संस्था का विघटन हो रहा है और क्या न्यायपालिका द्वारा इस क्षेत्र में दिखाई गई संवेदनशीलता और सक्रियता सामाजिक स्थिरता को बनाए रखने में न्यायसंगत है?

अनुसंधान के उद्देश्य (Objectives of the Research)

1. भारत में वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक विभिन्न व्यक्तिगत कानूनों के तहत वैवाहिक संबंधों के बदलते प्रतिमानों (Patterns) का विस्तृत विश्लेषण करना।
2. वैवाहिक कानूनों के संहिताकरण और विधायी संशोधनों के कारण समाज पर पड़ने वाले सामाजिक-विधिक प्रभावों की समीक्षा करना।
3. 'सह-जीवन संबंध' (Live-In Relationship) और 'समलैंगिक विवाह' (Same-Sex Marriage) जैसी अवधारणाओं की विधिक और संवैधानिक वैधता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।
4. वैवाहिक विवादों के समाधान में न्यायपालिका की भूमिका और संवेदनशीलता का अध्ययन करना।

1.4 शोध परिकल्पना (Hypothesis) और अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

शोध परिकल्पना (Hypothesis)
H_1: हिंदू व्यक्तिगत कानून और अन्य व्यक्तिगत कानूनों में अत्यधिक विधायी हस्तक्षेप के कारण विवाह की पारंपरिक दैवीय और 'संस्कारात्मक' प्रकृति पर गंभीर संकट उत्पन्न हो गया है और यह एक मात्र नागरिक संविदा में परिवर्तित होती जा रही है।

H_2: विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 1964 और 1976 द्वारा तलाक के आधारों का अत्यधिक उदारीकरण करने के फलस्वरूप वैवाहिक स्थिरता में कमी आई है और पारिवारिक विघटन की दर में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।
H_3: स्वतंत्रता के बाद पारित संहिताबद्ध विधिक अधिनियमों ने महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और कानूनी स्थिति में व्यापक सुधार किया है तथा उन्हें पुरुषों के समकक्ष अधिकार प्रदान किए हैं।

अनुसंधान पद्धति (Research Methodology)

इस शोध में विषय की प्रकृति को देखते हुए सैद्धांतिक (Doctrinal) और गैर-सैद्धांतिक/व्यावहारिक (Non-Doctrinal) दोनों अनुसंधान पद्धतियों के सम्मिश्रण का उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक विकासक्रम को समझने के लिए तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

प्राथमिक स्रोतों के रूप में भारत के सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों के ऐतिहासिक निर्णयों (जैसे AIR, SCC, SCR, CrLJ) का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में विधि आयोग की रिपोर्टों, राष्ट्रीय महिला आयोग के प्रतिवेदनों, प्रतिष्ठित कानूनी पत्रिकाओं (Journals of ILI), विधि विशेषज्ञों (जैसे डॉ. पारस दीवान, जे.डी.एम. डेरेट) की टिप्पणियों और विभिन्न संसदीय बहसों का गहन अध्ययन किया गया है।

अध्याय 2: हिंदू व्यक्तिगत कानून और विवाह एक संस्कार के रूप में

2.1 वैदिक और शास्त्रीय अवधारणा

प्राचीन हिंदू न्यायशास्त्र (Classical Hindu Law) के अनुसार, विवाह कोई समझौता या नागरिक अनुबंध नहीं है, बल्कि यह एक अत्यंत पवित्र, धार्मिक और शाश्वत 'संस्कार' है। मनुस्मृति के अनुसार, पति और पत्नी का यह संबंध केवल इस भौतिक संसार या वर्तमान जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मृत्यु के बाद भी परलोक में और जन्म-जन्मांतर तक चलने वाला एक शाश्वत बंधन है (जन्म-जन्मांतर का बंधन)। शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि पुरुष अपने आप में तब तक अपूर्ण रहता है जब तक वह विवाह करके पत्नी को अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार नहीं कर लेता: *"वही मनुष्य पूर्ण है जो अपनी पत्नी, स्वयं और अपनी संतान से मिलकर बना हो।"

हिंदू विवाह के तीन प्रमुख आध्यात्मिक और सामाजिक उद्देश्य माने गए हैं:

1. धर्म (Dharma): धार्मिक कर्तव्यों का सामूहिक पालन। पत्नी को 'सहधर्मिणी' कहा गया है, जिसके बिना कोई भी वैदिक यज्ञ या अनुष्ठान पूर्ण नहीं हो सकता था।
2. प्रजा (Praja): वंश की निरंतरता और समाज के स्थायित्व के लिए संतान (विशेषकर पुत्र) की उत्पत्ति, जो माता-पिता को 'पुत' नामक नर्क से मुक्ति दिला सके।
3. रति (Rati): शारीरिक और मानसिक आनंद का विधिक और सामाजिक नियमन।

चूँकि यह संघ शाश्वत था, इसलिए शास्त्रीय हिंदू कानून में तलाक या विवाह विच्छेद की कोई परिकल्पना ही नहीं थी। मनुस्मृति का प्रसिद्ध उद्घोष है कि "न तो क्रय-विक्रय द्वारा और न ही परित्याग द्वारा किसी पत्नी को उसके पति के वैवाहिक बंधनों से मुक्त किया जा सकता है।" इसी अपरिवर्तनीयता के कारण हिंदू समाज में विधवा पुनर्विवाह को भी लंबे समय तक धार्मिक मान्यता नहीं दी गई, जिसने कालांतर में बाल विवाह और सती प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियों को जन्म दिया।

2.2 हिंदू विवाह अधिनियम, 1955: आवश्यक शर्तें और विधिक प्रावधान

18 मई 1955 को लागू हुआ हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (The Hindu Marriage Act, 1955) आधुनिक भारतीय कानूनी इतिहास का एक ऐतिहासिक मील का पत्थर है। इस अधिनियम ने सदियों पुराने शास्त्रीय हिंदू कानून के ताने-बाने को संहिताबद्ध करते हुए उसमें युगांतकारी और प्रगतिशील परिवर्तन किए। अधिनियम की धारा 5 के तहत एक वैध हिंदू विवाह के संपन्न होने के लिए निम्नलिखित पांच अनिवार्य विधिक शर्तों का होना आवश्यक है:

धारा अनिवार्य शर्त विधिक निहितार्थ

धारा 5(i) जीवित जीवनसाथी का न होना (Monogamy) विवाह के समय दोनों पक्षों में से किसी का भी पूर्व जीवित पति या पत्नी नहीं होना चाहिए। इसने बहुविवाह की प्रथा को पूरी तरह समाप्त कर दिया।

धारा 5(ii) मानसिक स्वस्थता और वैध सहमति (a) कोई पक्षकार मानसिक अस्वस्थता के कारण वैध सहमति देने में असमर्थ न हो; (b) मानसिक विकार से पीड़ित न हो जो संतानोत्पत्ति के लिए अनुपयुक्त हो; (c) पागलपन के दौरे न आते हों।

धारा 5(iii) आयु सीमा विवाह के समय वर की आयु 21 वर्ष और वधू की आयु 18 वर्ष पूर्ण होनी चाहिए।

धारा 5(iv) प्रतिषिद्ध नातेदारी का निषेध पक्षकार प्रतिषिद्ध नातेदारी की सीमाओं (Degrees of Prohibited Relationship) के भीतर नहीं होने चाहिए, जब तक प्रथा अनुमति न दे।

धारा 5(v) सपिंड संबंध का निषेध पक्षकार एक-दूसरे के 'सपिंड' नहीं होने चाहिए (पिता की ओर से 5 और माता की ओर से 3 पीढ़ियाँ), जब तक वैध प्रथा अनुमति न दे।

2.3 सप्तपदी और विवाह का वैधानिक पंजीकरण

अधिनियम की धारा 7 हिंदू विवाह के अनुष्ठानिक और धार्मिक महत्व को बनाए रखती है। इसके अनुसार, एक हिंदू विवाह किसी भी पक्षकार के प्रथागत रीति-रिवाजों और उत्सवों के अनुसार संपन्न किया जा सकता है। यदि इन रीति-रिवाजों में सप्तपदी (Saptapadi) शामिल है (अर्थात् पवित्र अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्त रूप से सात फेरे या सात कदम चलना), तो विवाह तब पूर्ण और बाध्यकारी हो जाता है जब सातवां कदम उठा लिया जाता है।

विवाह का पंजीकरण (धारा 8): हिंदू विवाहों के विधिक साक्ष्य को सुगम बनाने के लिए धारा 8 राज्य सरकारों को विवाह पंजीकरण नियम बनाने की शक्ति देती है। सीमा बनाम अश्वनी कुमार [(2006) 2 SCC 578] के ऐतिहासिक मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि बाल विवाह को रोकने, द्विविवाह की जाँच करने और परित्यक्त महिलाओं को कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए भारत के सभी नागरिकों के विवाह का अनिवार्य पंजीकरण होना चाहिए, चाहे उनका धर्म कुछ भी हो। इसके अनुपालन में राज्यों ने कड़े नियम बनाए हैं:

उत्तर प्रदेश विवाह पंजीकरण नियमावली, 2017: इसके तहत राज्य में होने वाले सभी विवाहों का ऑनलाइन पंजीकरण अनिवार्य कर दिया गया है, जिसमें आधार कार्ड और विधिक दस्तावेजों का सत्यापन आवश्यक है।

उत्तराखंड अनिवार्य विवाह पंजीकरण अधिनियम, 2010: इसका मुख्य उद्देश्य बाल विवाहों पर रोक लगाना, बहुविवाह की जाँच करना, और विधवाओं या परित्यक्त पत्नियों को भरण-पोषण और बच्चों की कस्टडी के अधिकारों को प्रयोग करने में सहायता करना है।

2.4 वैवाहिक उपचार: दांपत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना और न्यायिक अलगाव

जब किसी विवाह में तनाव उत्पन्न होता है, तो अधिनियम पक्षकारों को पूर्ण विच्छेद से बचाने और समझौते का अवसर देने के लिए दो उपचार प्रदान करता है:

1. दांपत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना (Restitution of Conjugal Rights) [धारा 9]: जब पति या पत्नी में से कोई भी पक्षकार, बिना किसी तर्कसंगत या विधिक कारण के, दूसरे पक्षकार के समाज (society) से अलग हो जाता है, तो पीड़ित पक्षकार जिला न्यायालय में दांपत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए याचिका दायर कर सकता है। न्यायालय कथनों की सत्यता से संतुष्ट होने पर डिक्री पारित कर सकता है। इस धारा की संवैधानिक वैधता को टी. सरिता बनाम वेंकटसुब्बैया में चुनौती दी गई थी, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार में इसे बरकरार रखा कि इसका उद्देश्य विवाह संस्था को बचाना है।
2. न्यायिक अलगाव (Judicial Separation) [धारा 10]: यह विवाह को पूरी तरह तोड़े बिना पक्षकारों को एक-दूसरे से अलग रहने की विधिक अनुमति देता है। कोई भी पक्षकार धारा 13(1) में दिए गए तलाक के किसी भी आधार पर न्यायिक अलगाव की डिक्री मांग सकता है। डिक्री पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता के लिए प्रतिवादी के साथ सहवास करना अनिवार्य नहीं रह जाता, हालांकि वैवाहिक विधिक दर्जा समाप्त नहीं होता।

2.5 विवाह शून्यता और तलाक के बदलते आधार (धारा 11, 12, 13 और 13-B)

अधिनियम के तहत वैवाहिक संबंधों की विधिक वैधता को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

शून्य विवाह (Void Marriages) [धारा 11]: यदि कोई विवाह धारा 5 की उपधारा (i), (iv) या (v) के उल्लंघन में संपन्न होता है (अर्थात् द्विविवाह, प्रतिषिद्ध नातेदारी, या सपिंड संबंध), तो वह विवाह प्रारंभ से ही पूर्णतः शून्य (Void ab-initio) होता है।

शून्यकरणीय विवाह (Voidable Marriages) [धारा 12]: ऐसा विवाह जो पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर न्यायालय द्वारा अमान्य (Annulled) घोषित किया जा सकता है। इसके मुख्य आधार हैं: प्रतिवादी की नपुंसकता के कारण विवाह का संपन्न (Consummated) न हो पाना, पक्षकार का मानसिक विकार का शिकार होना, या सहमति बलपूर्वक या धोखाधड़ी से प्राप्त की गई हो (जैसा कि सुंदर लाल सोनी बनाम नमिता जैन (AIR 2006 MP 51) में तय हुआ कि आयु और पूर्व विवाहित होने के तथ्य को छुपाना विधिक धोखाधड़ी है)।

तलाक के आधार (Divorce) [धारा 13]: विवाह कानून (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा तलाक के नियमों को व्यापक बनाया गया। धारा 13(1) के तहत पति या पत्नी निम्नलिखित आधारों पर तलाक की डिक्री प्राप्त कर सकते हैं:

व्यभिचार (Adultery) [धारा 13(1)(i)]

क्रूरता (Cruelty) [धारा 13(1)(ia)]: इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों क्रूरता शामिल है। नवीन कोहली बनाम नीलू कोहली (AIR 2004 All 1) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि क्रूरता का अर्थ ऐसा आचरण है जिससे पीड़ित पक्षकार के लिए दूसरे के साथ रहना मानसिक रूप से असंभव हो जाए। साधना श्रीवास्तव बनाम अरविंद कुमार (AIR 2006 All 7) में माना गया कि जीवनसाथी पर चरित्रहीनता के झूठे आरोप लगाना गंभीर मानसिक क्रूरता है।

परित्याग (Desertion) [धारा 13(1)(ib)]: बिना किसी उचित विधिक कारण के लगातार दो वर्षों तक जीवनसाथी को छोड़ देना।

मानसिक विकार [धारा 13(1)(iii)]: असाध्य मानसिक अस्वस्थता या सिज़ोफ्रेनिया।
धर्म परिवर्तन [धारा 13(1)(ii)], संन्यास या लापता होना [धारा 13(1)(vi/vii)]
पारस्परिक सहमति से तलाक (Divorce by Mutual Consent) [धारा 13-B]: यह हिंदू विवाह के इतिहास में सबसे बड़ा विधिक बदलाव है। इसके तहत दोनों पक्ष संयुक्त रूप से याचिका दायर कर सकते हैं यदि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग रह रहे हों, एक साथ रहने में असमर्थ हों, और आपसी सहमति से विवाह को समाप्त करने का निर्णय लिया हो। धारा 13-B(2) के तहत 6 महीने का न्यूनतम प्रतीक्षा समय (Cooling-off period) अनिवार्य किया गया है ताकि सुलह की संभावना बनी रहे, हालांकि समकालीन न्यायिक निर्णयों में यदि विवाह पूरी तरह टूट चुका हो (Irretrievable Breakdown), तो न्यायालय इस अवधि को माफ भी कर सकते हैं।

अध्याय 3: अन्य धार्मिक व्यक्तिगत कानूनों के तहत वैवाहिक संबंध

3.1 मुस्लिम व्यक्तिगत कानून: निकाह, महर और विवाह के प्रकार

इस्लामिक न्यायशास्त्र (Sharia) के अंतर्गत वैवाहिक संबंध की अवधारणा पश्चिमी और हिंदू न्यायशास्त्र से सर्वथा भिन्न है। इस्लाम में विवाह को 'निकाह' (Nikah) कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'एकत्र करना और बांधना'। विधिक रूप से, मुस्लिम विवाह एक नागरिक अनुबंध (Civil Contract) है, जिसका मुख्य उद्देश्य यौन संबंधों को वैध बनाना और संतानोत्पत्ति करना है। मशहूर न्यायविद न्यायमूर्ति महमूद ने अब्दुल कादिर बनाम सलीमा (1886)* के मामले में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया था: *"मुहम्मडन कानून के तहत विवाह कोई धार्मिक संस्कार (Sacrament) नहीं है, बल्कि यह पूरी तरह से एक नागरिक अनुबंध है।"

निकाह के विधिक प्रकार

1. साधारण निकाह (स्थायी विवाह): यह एक नियमित और स्थायी प्रकृति का अनुबंध होता है, जिसे कानूनी रूप से निर्धारित नियमों के तहत समाप्त (तलाक या खुला द्वारा) किया जा सकता है।
2. निकाह मुता (Nikah Mut'ah): यह केवल शिया (अशना अशरी) न्यायशास्त्र में मान्य एक निश्चित अवधि (Fixed-term) का विवाह है। इसमें अनुबंध के समय ही विवाह की समय-सीमा और महर की राशि तय कर दी जाती है। सुन्नी न्यायशास्त्र में इसे पूरी तरह से अमान्य और प्रतिबंधित माना गया है।
3. निकाह मिस्यार (Nikah Misyar): यह सुन्नी समुदाय में प्रचलित एक विधिक समझौता है, जहाँ पत्नी अपनी इच्छा से पति के साथ रहने, आवासीय व्यवस्था और वित्तीय भरण-पोषण (नाफ़का) के कुछ विधिक अधिकारों का स्वेच्छा से परित्याग कर देती है।

मेहर (Mahr) की अवधारणा

महर वह अनिवार्य धनराशि या संपत्ति है, जिसे मुस्लिम विवाह अनुबंध के समय वर द्वारा वधू को उसके सम्मान और वित्तीय सुरक्षा के प्रतीक के रूप में देने का वादा किया जाता है। यह हिंदू कानून के 'दहेज' या पश्चिमी 'ब्राइड प्राइस' से पूरी तरह भिन्न है, क्योंकि यह राशि सीधे तौर पर वधू के पिता को न मिलकर स्वयं वधू के विशेष स्वामित्व में जाती है और वह इस पर पूर्ण विधिक नियंत्रण रखती है।

विधिक प्रतिबंध और बहुविवाह (Polygamy)

कुरान की सूरह 4 आयत 3 के अनुसार, एक मुस्लिम पुरुष को एक समय में अधिकतम चार पत्नियां रखने की अनुमति दी गई है, बशर्ते वह उन सभी के बीच पूर्ण न्याय, समानता और निष्पक्षता बनाए रखने में समर्थ हो। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ है, तो उसे केवल एक ही विवाह करने का निर्देश है। इसके विपरीत, एक मुस्लिम महिला के लिए बहुपति प्रथा (Polyandry) पूरी तरह से विधिक रूप से प्रतिबंधित और अवैध है।

3.2 ईसाई व्यक्तिगत कानून और विवाह अधिनियम, 1872

भारत में ईसाई समुदाय के वैवाहिक संबंध भारतीय ईसाई विवाह अधिनियम, 1872 (The Indian Christian Marriage Act, 1872) के माध्यम से संचालित और विनियमित होते हैं (यह अधिनियम गोवा, दमन और दीव को छोड़कर संपूर्ण भारत पर प्रभावी है, क्योंकि वहाँ पुर्तगाली सिविल कोड लागू है)।

मुख्य वैधानिक प्रावधान

ईसाई विवाह केवल चर्च के अधिकृत पादरी (Priest/Minister) या सरकार द्वारा नियुक्त मैरिज रजिस्ट्रार की उपस्थिति में ही संपन्न किया जा सकता है।

विवाह के समय पुरुष की न्यूनतम आयु 21 वर्ष और महिला की 18 वर्ष होनी आवश्यक है।

ईसाई विवाह विच्छेद अधिनियम, 1869 (The Indian Divorce Act, 1869)

ईसाई विवाहों को समाप्त करने के विधिक आधार इस अधिनियम में दिए गए हैं। इसके तहत पति या पत्नी निम्नलिखित विशिष्ट आधारों पर न्यायालय से तलाक की डिक्री मांग सकते हैं: व्यभिचार (Adultery), क्रूरता (Cruelty), लगातार दो

वर्षों या उससे अधिक समय से परित्याग (Desertion), असाध्य मानसिक विक्षिप्तता (Insanity), या साथी द्वारा स्वेच्छा से विवाह को संपन्न करने से इनकार करना (Willful refusal to consummate)।

3.3 पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 एवं 1988 के संशोधन

भारत का पारसी समुदाय अपने विशिष्ट वैवाहिक मामलों के नियमन के लिए पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 (The Parsi Marriage and Divorce Act, 1936) के अधीन आता है। ऐतिहासिक रूप से, पारसी समाज में प्राचीन काल में हिंदू रीति-रिवाजों के प्रभाव के कारण बाल विवाह की प्रथा आ गई थी, जिसे समाप्त करने के लिए पहले 1865 का अधिनियम और बाद में 1936 का व्यापक कानून लाया गया।

विवाह की विधिक अनिवार्यताएँ (धारा 3)

पक्षकार प्रतिषिद्ध नातेदारी और रक्त संबंधों (Consanguinity and Affinity) के भीतर नहीं होने चाहिए।

विवाह का धार्मिक अनुष्ठान अनिवार्य रूप से 'आशीर्वाद' (Ashirvad) प्रथा के अनुसार संपन्न होना चाहिए।

यह अनुष्ठान एक अधिकृत पारसी पुरोहित (Dastur) द्वारा दो स्वतंत्र पारसी गवाहों की उपस्थिति में किया जाना चाहिए।

पारसी मैरिज सर्टिफिकेट पर पुरोहित, वर-वधू और गवाहों के हस्ताक्षर अनिवार्य हैं।

1988 के ऐतिहासिक संशोधन द्वारा किए गए सुधार

पारसी पंचायत और अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिशों पर संसद ने पारसी विवाह और तलाक (संशोधन) अधिनियम, 1988 पारित किया, जिसने पारसी कानून को काफी हद तक हिंदू विवाह अधिनियम के समकक्ष ला खड़ा किया:

1. आयु सीमा का निर्धारण: इसके तहत पहली बार वधू के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष और वर के लिए 21 वर्ष अनिवार्य की गई।
2. तलाक के आधुनिक आधारों का समावेश: 1988 के संशोधन के माध्यम से पारसी कानून में भी 'आपसी सहमति से तलाक' (Divorce by Mutual Consent - धारा 32-B) और विवाह के पूरी तरह टूट जाने के सिद्धांत (Irretrievable Breakdown) को विधिक रूप से मान्यता दी गई।

3.4 सिख और जैन व्यक्तिगत कानून: आनंद कारज और भद्रबाहु संहिता

सिख विवाह और आनंद विवाह अधिनियम (The Anand Marriage Act, 1909)

सिख समुदाय में विवाह को एक पवित्र और आध्यात्मिक साझेदारी माना जाता है, जिसे 'आनंद कारज' (Anand Karaj) अर्थात् 'Blissful Union' कहा जाता है। इसकी शुरुआत तीसरे गुरु, गुरु अमर दास जी ने की थी और इसके चार धार्मिक भजनों जिन्हें ' lavaan' (Lavan) कहा जाता है, की रचना चौथे गुरु, गुरु राम दास जी ने की थी।

विधिक विकास: वर्ष 1909 में ब्रिटिश काल के दौरान आनंद विवाह अधिनियम पारित किया गया था। परंतु, स्वतंत्रता के बाद सिखों को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के कानूनी दायरे में शामिल कर लिया गया था, जिसका सिख विद्वानों द्वारा विरोध किया गया। सिखों की पहचान और मांग को देखते हुए संसद ने आनंद विवाह (संशोधन) अधिनियम, 2012 पारित किया, जिसके तहत अब सिख समुदाय के लोग अपने 'आनंद कारज' विवाहों का पंजीकरण सीधे इस विशिष्ट अधिनियम के तहत करा सकते हैं, और उन्हें हिंदू विवाह अधिनियम के तहत पंजीकरण कराने की बाध्यता नहीं रह गई है।

जैन व्यक्तिगत कानून और भद्रबाहु संहिता

जैन न्यायशास्त्र (Jaina Law) के अपने प्राचीन विधिक ग्रंथ हैं, जिनमें 'भद्रबाहु संहिता', वर्धमान नीति और अशन नीति प्रमुख हैं। 1916 में बैरिस्टर जगमंदर लाल जैनी ने भद्रबाहु संहिता का अनुवाद कर आधुनिक जैन कानून की नींव रखी, जिसमें दत्तक ग्रहण और विवाह के जैन नियमों (जैसे स्वयंबर, प्राजापत्य) का विस्तृत विवरण है।

यद्यपि जैन समुदाय की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान है, परंतु भारत सरकार ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 2 के स्पष्टीकरण के तहत विधिक और विनियामक उद्देश्यों के लिए जैन धर्म के अनुयायियों को 'हिंदू' शब्द की व्यापक कानूनी परिभाषा के अंतर्गत ही समाहित किया है।

अध्याय 4: समकालीन सामाजिक-विधिक रुझान और अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

4.1 विशेष विवाह अधिनियम, 1954 और अंतर्जातीय/अंतर्धार्मिक विवाह

भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से बहुलवादी समाज में जातिगत संकीर्णता और धार्मिक कट्टरता को तोड़ने के लिए विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (The Special Marriage Act, 1954) को एक अत्यंत प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष विधिक उपकरण के रूप में निर्मित किया गया है। यह अधिनियम भारत के किसी भी नागरिक को अपने व्यक्तिगत धार्मिक कानूनों को छोड़े बिना, किसी भी अन्य धर्म या जाति के व्यक्ति के साथ एक वैध सिविल विवाह (Civil Marriage) करने की पूर्ण विधिक स्वतंत्रता प्रदान करता है।

अधिनियम के तहत विवाह की अनिवार्य शर्तें (धारा 4)

- विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से किसी का भी कोई अन्य जीवित जीवनसाथी नहीं होना चाहिए (पूर्ण एकविवाह)।
- दोनों पक्षकार वैध सहमति देने के लिए मानसिक रूप से पूरी तरह स्वस्थ होने चाहिए।
- विवाह के समय वधू की आयु 18 वर्ष और वर की न्यूनतम आयु 21 वर्ष पूर्ण होनी चाहिए।
- पक्षकार प्रतिषिद्ध नातेदारी की सीमाओं के भीतर नहीं होने चाहिए, जब तक कि रूढ़ि अनुमति न दे।

वैवाह की वैधानिक प्रक्रिया

[30 दिनों का लिखित नोटिस (मैरिज ऑफिसर को)]
|
▼
[सार्वजनिक प्रदर्शन (Conspicuous Place पर)]
|
▼
[30 दिनों की आपत्ति अवधि (Objection Period)]
|
▼
[यदि कोई वैध आपत्ति नहीं -> विवाह का पंजीकरण (वैध सिविल विवाह)]

यह अधिनियम अंतर्जातीय और अंतर्धार्मिक जोड़ों को सामाजिक ऑनर किलिंग और पारिवारिक उत्पीड़न से बचाने में भारतीय न्यायशास्त्र का सबसे मजबूत स्तंभ है।

4.2 सह-जीवन संबंध (Live-In Relationship): विधिक स्थिति और अधिकार

आधुनिक महानगरीय संस्कृति में वैवाहिक दायित्वों और अदालती विच्छेदों की लंबी प्रक्रियाओं से बचने के लिए युवाओं के बीच 'लाइव-इन रिलेशनशिप' (बिना विवाह के पति-पत्नी की तरह एक साथ रहना) का चलन तेजी से बढ़ा है।

विधिक स्थिति और न्यायिक दृष्टिकोण

भारतीय पर्सनल लॉ बोर्ड या हिंदू विवाह अधिनियम में लाइव-इन रिलेशनशिप को कोई प्रत्यक्ष वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं है। परंतु, भारत के सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों ने अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) की व्यापक व्याख्या करते हुए इसे पूरी तरह से वैध माना है:

पायल कटारा बनाम अधीक्षक, नारी निकेतन (AIR 2001 All 254): इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक व्यवस्था देते हुए कहा कि "यदि दो वयस्क (Major) पुरुष और महिला अपनी स्वतंत्र इच्छा से बिना विवाह किए भी एक साथ रहना चाहते हैं, तो यह विधिक रूप से कोई अपराध नहीं है। किसी भी व्यक्ति को उनके इस सह-जीवन में बाधा डालने का विधिक अधिकार नहीं है।"

एस. खुशबू बनाम कनियाम्माल (2010): सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में स्पष्ट किया कि वयस्कों के बीच सहमति से बना लाइव-इन संबंध संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग है और इसे अवैध या आपराधिक कृत्य नहीं माना जा सकता।

डी. वेलुसामी बनाम डी. पेचैयाम्मल (2010): न्यायालय ने लाइव-इन संबंधों के दुरुपयोग को रोकने के लिए कुछ कड़े मापदंड तय किए। केवल सप्ताहांत बिताना या शारीरिक संबंधों के लिए साथ रहना 'विवाह की प्रकृति का संबंध' नहीं माना जाएगा। इसके लिए समाज के सामने खुद को पति-पत्नी की तरह प्रस्तुत करना, कानूनी विवाह की आयु रखना और एक महत्वपूर्ण अवधि तक साझा घर में रहना आवश्यक है।

महिलाओं और बच्चों के अधिकार

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005:

इस अधिनियम की धारा 2(f) के तहत 'विवाह की प्रकृति के संबंधों' (Relationships in the nature of marriage) को घरेलू संबंध के दायरे में शामिल किया गया है, जिससे लाइव-इन पार्टनर महिला को भी भरण-पोषण, पैलिमनी (Palimony) और घरेलू हिंसा के खिलाफ पूर्ण कानूनी संरक्षण प्राप्त होता है।

बच्चों की विधिक वैधता (धारा 16): सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि लंबे समय के लाइव-इन संबंध से पैदा होने वाले बच्चों को समाज 'अवैध' नहीं कह सकता। हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 16 के विधिक अनुमान के तहत ऐसे बच्चों को वैध माना जाएगा और वे अपने माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्ति (Self-acquired property) में पूर्ण उत्तराधिकार के हकदार होंगे।

4.3 समलैंगिक विवाह (Same-Sex Marriage): वैश्विक इतिहास और वर्तमान बहस

समलैंगिक विवाह (Same-Sex Marriage) या विवाह समानता (Marriage Equality) 21वीं सदी के वैश्विक मानवाधिकारों

और न्यायशास्त्र की सबसे ज्वलंत और युगांतकारी बहस है।

संक्षिप्त ऐतिहासिक और वैश्विक विकासक्रम

प्राचीन और मध्यकालीन संदर्भ: रोमन साम्राज्य के इतिहास में कुछ समलैंगिक विवाहों के प्रसंग मिलते हैं (जैसे सम्राट नीरो और एलागाबालस के संदर्भ में), परंतु शास्त्रीय रोमन कानून में उन्हें कभी विधिक संप्रभुता या 'मैट्रिमोनियम' (Matrimonium) का दर्जा प्राप्त नहीं था, क्योंकि विवाह का मूल विधिक उद्देश्य 'मातृत्व' (Mater) और जैविक संतानोत्पत्ति ही माना जाता था।

आधुनिक युग की शुरुआत: 20वीं सदी के अंत में समलैंगिक अधिकारों के आंदोलनों ने तेजी पकड़ी। वर्ष 2001 में नीदरलैंड्स (Netherlands) दुनिया का पहला ऐसा देश बना जिसने समलैंगिक विवाह को पूर्ण कानूनी और वैधानिक मान्यता प्रदान की।

वैश्विक परिदृश्य: इसके बाद से अब तक दुनिया के 30 से अधिक देशों (जैसे केंटकी/कनाडा, फ्रांस, अमेरिका, आयरलैंड, दक्षिण अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और ताइवान) ने अपने विवाह कानूनों में संशोधन कर समलैंगिक विवाहों को पूरी तरह से वैध कर दिया है। अमेरिकी मानवशास्त्रीय संघों (American Anthropological Association) ने अपने शोधों में स्पष्ट प्रतिपादित किया है कि "सभ्यता के विकास या सामाजिक व्यवस्था का स्थायित्व केवल विपरीत-लिंगी (Heterosexual) विवाह संस्था पर ही निर्भर नहीं है।"

समलैंगिक विवाह के पक्ष और विपक्ष में विधिक व सामाजिक दृष्टिकोण

दृष्टिकोण पक्ष में तर्क (Pros) विपक्ष में तर्क (Cons)

मानवाधिकार और समानता: यौन अभिविन्यास (Sexual Orientation) के आधार पर विवाह के विधिक अधिकार से वंचित करना समानता के अधिकार (अनुच्छेद 14) का घोर उल्लंघन है। | विवाह की पारंपरिक संस्था सदियों से केवल एक पुरुष और एक महिला के बीच के जैविक संघ के रूप में ही परिभाषित रही है, इसे बदलना प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध है।

विधिक और नागरिक अधिकार: समलैंगिक जोड़ों को विपरीत-लिंगी जोड़ों की भांति कर लाभ, संयुक्त संपत्ति अधिकार, अस्पताल विज़िटिंग अधिकार और उत्तराधिकार जैसे संरक्षण मिलने चाहिए। विवाह का प्राथमिक और मूल उद्देश्य जैविक रूप से संतानोत्पत्ति (Procreation) और वंश की निरंतरता है, जो समलैंगिक जोड़ों में प्राकृतिक रूप से संभव नहीं है।

बाल कल्याण और समाज: सामाजिक विज्ञान के शोध बताते हैं कि समलैंगिक माता-पिता भी बच्चों को एक उत्कृष्ट, सुरक्षित और प्यार भरा पारिवारिक माहौल देने में पूरी तरह सक्षम हैं। | बच्चों के संतुलित मानसिक विकास के लिए एक जैविक माता (स्त्री) और एक जैविक पिता (पुरुष) दोनों की भूमिका और साया होना अनिवार्य है। |

भारतीय संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय ने नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018) में धारा 377 को निरस्त कर समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से तो बाहर कर दिया है, परंतु समलैंगिक विवाह को वैधानिक मान्यता देने का मामला वर्तमान में भारतीय संसद और समाज के बीच गहन विमर्श और नीतिगत विधिक निर्णयों के अधीन है

4.4 अंतरराष्ट्रीय वैवाहिक कानून: हेग कन्वेंशन और वैश्विक नागरिकता

वैश्वीकरण के इस युग में जब विभिन्न देशों के नागरिकों के बीच विवाह और विवाह विच्छेद (तलाक) के मामले बढ़ रहे हैं, तो 'निजी अंतरराष्ट्रीय कानून' (Private International Law) या 'कानूनों का टकराव' (Conflict of Laws) का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है।

1. हेग विवाह कन्वेंशन, 1978 (Hague Marriage Convention): यह कन्वेंशन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के विवाह कानूनों में एकरूपता लाने के लिए निर्मित किया गया था। इसका अनुच्छेद 9 यह महत्वपूर्ण विधिक सिद्धांत प्रतिपादित करता है कि "यदि कोई विवाह उस देश के कानून के अनुसार वैध रूप से संपन्न हुआ है जहाँ वह आयोजित हुआ था (Lex Loci Celebrationis), तो उस विवाह को कन्वेंशन के अन्य सभी हस्ताक्षरकर्ता देशों में भी विधिक रूप से वैध माना जाएगा।"
2. हेग तलाक कन्वेंशन, 1970 (Hague Divorce Convention):यह कन्वेंशन एक देश में प्राप्त की गई तलाक की डिक्री या न्यायिक अलगाव को दूसरे देशों में विधिक मान्यता देने के लिए बाध्य करता है ताकि पक्षकारों को दोहरे मुकदमों से बचाया जा सके।

हालाँकि, भारत ने इन अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, परंतु भारतीय न्यायालय अंतरराष्ट्रीय मामलों में 'सौहार्द के विधिक सिद्धांत' (Principle of Comity) का पालन करते हुए विदेशी न्यायालयों के तलाक और कस्टडी के आदेशों को तब तक मान्यता देते हैं जब तक कि वे भारतीय सार्वजनिक नीति (Indian Public Policy) या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध न हों।

अध्याय 5: संवैधानिक मापदंड, वैधानिक प्रभाव और निष्कर्ष

5.1 भारतीय संविधान और वैवाहिक संबंध

भारतीय संविधान देश का सर्वोच्च और मूलभूत विधिक दस्तावेज है। यद्यपि संविधान में प्रत्यक्ष रूप से वैवाहिक अपराधों या विवाह की संहिताओं का उल्लेख नहीं है, परंतु इसके मौलिक अधिकार (भाग III) और राज्य के नीति निदेशक तत्व (भाग IV) वैवाहिक संबंधों और व्यक्तिगत कानूनों के नियमन की विधिक सीमाएं तय करते हैं:

अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार): यह गारंटी देता है कि राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता या कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। वैवाहिक कानूनों में पुरुषों और महिलाओं के बीच किसी भी प्रकार का मनमाना भेदभाव अनुच्छेद 14 के तहत असंवैधानिक है।

अनुच्छेद 15(1) और 15(3): अनुच्छेद 15(1) राज्य को केवल लिंग (Sex) के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ भेदभाव करने से रोकता है। वहीं, अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं के कल्याण के लिए 'विशेष विधिक प्रावधान' बनाने की सकारात्मक शक्ति देता है। इसी शक्ति का उपयोग करके संसद ने घरेलू हिंसा अधिनियम और हिंदू विवाह अधिनियम में महिलाओं के पक्ष में विशेष वैवाहिक अधिकार निर्मित किए हैं।

अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार): सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट किया है कि "अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने का अधिकार", "वैवाहिक निजता का अधिकार" और "गरिमा के साथ जीने का अधिकार" अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार हैं।

अनुच्छेद 44 (समान नागरिक संहिता – Uniform Civil Code): नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत अनुच्छेद 44 राज्य को यह निर्देश देता है कि वह भारत के संपूर्ण क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक 'समान नागरिक संहिता' लागू करने का प्रयास करे। इसका उद्देश्य सभी धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों में मौजूद विसंगतियों को दूर कर विवाह, तलाक और उत्तराधिकार के एक समान धर्मनिरपेक्ष कानून का निर्माण करना है, जो वर्तमान विधिक विमर्श का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बना हुआ है।

5.2 वैवाहिक अपराध और दंडात्मक प्रावधान (IPC / BNS परिप्रेक्ष्य)

विवाह की आड़ में महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों और क्रूरता को रोकने के लिए दंडात्मक न्यायशास्त्र में कठोर प्रावधान किए गए हैं:

I. दहेज मृत्यु (Dowry Death) [धारा 304-B / समरूप BNS धारा]

वर्ष 1986 में दहेज की कुप्रथा के कारण होने वाली बहुओं की हत्याओं (ब्राइड बर्निंग) को रोकने के लिए इसे शामिल किया गया। इसके विधिक तत्व निम्नलिखित हैं:

- महिला की मृत्यु विवाह के सात वर्षों के भीतर किसी जलने, शारीरिक चोट या असामान्य परिस्थितियों में होनी चाहिए।
- यह साबित होना चाहिए कि मृत्यु से ठीक पहले (Soon before her death) उसे उसके पति या ससुराल वालों द्वारा दहेज की मांग के संबंध में क्रूरता या उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा था।
- जब ये तत्व साबित हो जाते हैं, तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-B के तहत न्यायालय यह विधिक अनुमान (Statutory Presumption) लगाएगा कि ऐसी मौत दहेज मृत्यु है। इसके लिए न्यूनतम 7 वर्ष से लेकर अधिकतम आजीवन कारावास तक की सजा का प्रावधान है।

II. विवाहित महिला के प्रति क्रूरता [धारा 498-A / समरूप BNS धारा]

यह धारा पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा किसी महिला को ऐसी क्रूरता का शिकार बनाने को दंडित करती है जो उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करे या उसके जीवन और स्वास्थ्य (शारीरिक या मानसिक) को गंभीर खतरा पैदा करे।

III. वैवाहिक बलात्कार (Marital Rape) की विधिक स्थिति और अपवाद

भारतीय दंडात्मक न्यायशास्त्र में वैवाहिक बलात्कार का अपवाद (Marital Rape Exemption) ऐतिहासिक रूप से 17वीं शताब्दी के ब्रिटिश न्यायविद सर मैथ्यू हेल के इस सिद्धांत पर आधारित रहा है कि विवाह के संविदात्मक समझौते के द्वारा पत्नी स्वयं को अपने पति को स्थायी रूप से सौंप देती है, जिसे वह वापस नहीं ले सकती।

वर्तमान स्थिति: वर्तमान कानून के तहत, यदि पत्नी की आयु 18 वर्ष से अधिक है, तो पति द्वारा उसके साथ उसकी सहमति के बिना बनाया गया शारीरिक संबंध तकनीकी रूप से बलात्कार की श्रेणी में नहीं आता है।

ऐतिहासिक न्यायिक हस्तक्षेप (Independent Thought बनाम भारत संघ – 2017): सर्वोच्च न्यायालय ने इस अपवाद को सीमित करते हुए ऐतिहासिक निर्णय दिया कि "18 वर्ष से कम आयु की नाबालिग पत्नी के साथ उसकी सहमति या असहमति के बिना बनाया गया शारीरिक संबंध पूर्ण रूप से बलात्कार माना जाएगा।" न्यायालय ने स्पष्ट किया कि बाल विवाह कानून के होते हुए कोई भी पति अपनी नाबालिग पत्नी की शारीरिक स्वायत्तता और मानवाधिकारों का हनन नहीं कर सकता।

घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत राहत: यद्यपि 18 वर्ष से अधिक की पत्नी के मामले में इसे आपराधिक बलात्कार नहीं माना गया है, परंतु घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के तहत इसे 'यौन उत्पीड़न' (Sexual Abuse) के रूप में पूर्णतः प्रतिबंधित किया गया है, जिसके आधार पर पत्नी न्यायिक अलगाव और वित्तीय मुआवजे की मांग विधिक रूप से कर सकती है।

5.3 निष्कर्ष, न्यायिक संवेदनशीलता और टिकाऊ समाधान (Durable Solutions)

निष्कर्ष (Conclusion)

इस विस्तृत विधिक और ऐतिहासिक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय समाज में वैवाहिक संबंधों की अवधारणा एक अत्यंत महत्वपूर्ण दौर से गुजर रही है। जहाँ एक ओर प्राचीन धार्मिक और 'संस्कारात्मक' मूल्य आज भी लोगों की सामाजिक सोच में गहराई से समाए हुए हैं, वहीं दूसरी ओर वैधानिक सुधारों, पश्चिमीकरण और न्यायिक सक्रियता ने इसे एक संविदात्मक और व्यक्तिगत अधिकार आधारित संघ में बदल दिया है। तलाक के कानूनों का उदारीकरण और समकालीन संबंधों (जैसे लाइव-इन) की स्वीकार्यता महिलाओं को स्वायत्तता तो प्रदान करती है, परंतु यह पारिवारिक स्थिरता और भावी पीढ़ी के सामाजिक ताने-बाने के लिए नई चुनौतियाँ भी प्रस्तुत करती है।

Judicial Sensitivity (न्यायिक संवेदनशीलता)

भारतीय न्यायालयों ने वैवाहिक विवादों को निपटाने में हमेशा दंडात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर 'सुधारात्मक और संवेगात्मक दृष्टिकोण' अपनाया है। न्यायालयों का यह मानना है कि विवाह केवल दो व्यक्तियों का नहीं, बल्कि दो परिवारों और समाज का विधिक संतुलन है। अतः जब तक अपरिहार्य न हो, विवाह को बचाने के हर संभव प्रयास किए जाने चाहिए।

टिकाऊ समाधान (Durable Solutions)

1. विवाह पूर्व अनिवार्य काउंसलिंग (Pre-Litigation Counseling): पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 और हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 23(2) के तहत न्यायालयों में मुकदमा दर्ज होने के बाद काउंसलिंग की व्यवस्था है, जो विवाद को और बढ़ा देती है। विधिक रूप से ऐसा संशोधन होना चाहिए कि अदालतों में मुकदमा दायर करने से ठीक पहले अनिवार्य मध्यस्थता और विवाह परामर्श की प्रक्रिया से गुजरना विधिक रूप से आवश्यक हो।
2. समान नागरिक संहिता (UCC) का संतुलित निर्माण: लैंगिक न्याय (Gender Justice) को सुनिश्चित करने के लिए सभी धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों में से महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण विसंगतियों को दूर कर एक आधुनिक, प्रगतिशील और सर्वसमावेशी नागरिक संहिता का निर्माण किया जाना चाहिए।
3. वैवाहिक संपत्ति के संयुक्त अधिकार: विवाह विच्छेद की स्थिति में महिलाओं को वित्तीय असुरक्षा से बचाने के लिए 'वैवाहिक संपत्ति के सह-स्वामित्व' (Co-ownership of Matrimonial Property) का कानून बनाया जाना चाहिए, ताकि घरेलू महिला को उसके द्वारा परिवार के प्रति दिए गए अमूर्त योगदान का विधिक अधिकार प्राप्त हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography / Sources Referenced)

1. अथर्ववेद एवं ऋग्वेद संहिता (विवाह सूक्त)
2. मनुस्मृति एवं शतपथ ब्राह्मण
3. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 एवं विशेष विवाह अधिनियम, 1954
4. पारसी विवाह और तलाक अधिनियम, 1936 (संशोधन 1988)
5. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005
6. भारत का सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय:
7. सीमा बनाम अश्वनी कुमार (2006)
8. डी. वेलुसामी बनाम डी. पेचैयाम्मल (2010)
9. इंडिपेंडेंट थॉट बनाम भारत संघ (2017)
10. हरविंदर कौर बनाम हरमंदर सिंह (AIR 1984 Delhi 66)
11. नवीन कोहली बनाम नीलू कोहली (AIR 2004 All 1)
12. नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018)